प्रियग्रन्थमाला।

सार्वदेशिक अनुसन्धान कार्यालय ग्रन्थमाला मणि सं० २

मानवीय शक्तियों का परिचय

और

उनका विकास

मूल्य
।)॥

प्रियरत्न

॥ ओ३म् ॥

मानवीय शक्तियों का परिचय

और

उनका विकास

जिसमें

कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय और अन्तःकरण (मन-बुद्धि-चित्त-अहङ्कार)
की शक्तियों का परिज्ञान और संवर्धन-प्रकार सुलभ रीति
से वर्णित है तथा प्रसङ्गतः मनोविज्ञान (प्रेतात्मा का
आह्वान-मेस्मरिज़म्-हिप्नोटिज़म) का स्वरूप तथा
परीक्षण और रीति विना कठिन अभ्यासों के
प्रदर्शित है, और अन्त में शास्त्रीय
स्वरूप तथा वैदिक मार्ग
का प्रकटन है।

—:o:—

लेखक और प्रकाशक

प्रियरत्न (आर्ष)

सार्वदेशिक अनुसन्धान कार्यालय

एस्पलेनेड रोड, देहली।

कार्तिक. दयानन्दाब्द १०३

देवीदयाल प्रिंटिंग वर्क्स देहली में मुद्रित

॥ ओ३म् ॥

"मानवीय शक्तियों का परिचय और उन का विकास"

मातृ वृन्द ! निज शक्तियों का परिज्ञान करना और उनसे यथोचित लाभ उठाना वैदिकी मर्यादा है। यजुर्वेद में एक मन्त्र है "स्वयं वाजिस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व। महिमा तेऽन्येन न सन्नशे" (यजुः।२३।१५) इस मन्त्र का देवता "विद्वान्" है यहां पर केवल पढ़ा लिखा पुरुष ही विद्वान् शब्द से अभिप्रेत नहीं है। किन्तु ऋषि दयानन्द की पद्धति से विद्वान् वह है कि जो विद्याओं को अध्ययन करके यथोचित उपयोग लेता है। उपनिषदों का मत भी यही है "यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्। तदा विद्वान् पुण्य पापे विहाय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति" (मुण्डकोपनिषद्।३।१।३। इस उपनिषद् वचन में ईश दर्शन करते हुए पुरुष को विद्वान् कहा है॥ उक्त वेद मन्त्र का भी यही भाव है। जो इसके अर्थ से विस्पष्ट है। इस लिये मेरा उपस्थापनीय विषय मन्त्र का देवता है। यही मन्त्राभिप्राय भी है। मन्त्रार्थ भी मन्त्र का

देवता होता है, ऐसा देवतावादियों का कथन है। स्यात्। उक्त वेद मन्त्र का अर्थ यह है कि (वाजिन्) हे शक्ति शाली जीवात्मन् (तन्वम्) निज तनु अर्थात् हस्तपाद नेत्र जिह्वा आदि साधन समुदाय को (स्वयं कल्पयस्व) अपने आप यानि खुद समर्थ बना और (स्वयं यजस्व) स्वयं ही निज साधन समुदाय को कार्य में लगा तथा (स्वयं जुषस्व) उसका फल भी स्वयं ही सेवन कर (महिमा ते) तेरी महिमा अर्थात् शक्ति (अन्येन) किसी से (न सन्नशे) नष्ट नहीं हो सकती। उक्त मन्त्र को उदाहरण से इस प्रकार समझ सकते हैं कि मानो आप किसी धर्मोत्सव में उपदेश सुनने जाते हैं। प्रथम उत्सव-स्थान तक पांव से चलना, कानों से सुनना और मन से समझना एक अनुष्ठान क्रम है। किन्तु इस कार्य के लिये पांव में चलने का कानों में सुनने का और मनमें समझने का सामर्थ्य आवश्यकीय है। अत एव वेद कहता है कि " स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व " हे शक्ति सम्पन्न जीवात्मन्! तू अपने पांव आदि साधनों को समर्थ बना अर्थात् अपने हस्तादि साधनों में सामर्थ्य को उत्पन्न करना मानवीय गुण या कर्तव्य है। वेद का यह एक संकेत या प्रोत्साहन है। वस्तुतः मनुष्य इस समय जो समाज मन्दिर आदि स्थानों में पांव से चलकर आजाता है, यह एक सामर्थ्य स्वयं ही सम्पादन किया है, बालकपन में इच्छा शक्ति और

गाढ प्रयत्न से बारम्बार गिर गिर कर उठते उठते पांव में चलने का सामर्थ्य उत्पन्न कर लिया था। इसी प्रकार कानों में सुनने और मन में समझने का सामर्थ्य भी स्वयं ही उत्पन्न करता है। यह बात आगे चलकर सुगमता से समझ में आ जावेगी कि मनुष्य अपने साधनों में अपने आप ही सामर्थ्य को उत्पन्न करता है। एवं सामर्थ्यानुकूल साधनों का एक विषय में सङ्गत होना यजन है। उदाहरण में उपदेश सुनने के लिये जो पांव श्रोत्र और मन का प्रवृत्त होना रूप यजन है वह इस सामर्थ्यवान् आत्मा के अधीन है। इसी लिये वेद ने कहा कि " स्वयं यजस्व " तथा उपदेश से संस्कार की संस्थिति अर्थात् श्रवण का लाभ आत्मा में होता है। यही श्रुति का सार है " स्वयं जुषस्व "। इस प्रकार आत्मा की प्रयत्न-शीलता मनुष्य जीवन का साफल्य और अमरपन है " महिमा तेऽन्येन न सन्नशे " का मर्म भी यही है।

२—सज्जनो! उक्त मन्त्र से यह विस्पष्ट सिद्ध हुआ कि मनुष्य यद्यपि अपना सम्पूर्ण कार्य्य उपर्य्युक्त साधनों द्वारा करता है, तथापि इस साधन समुदाय तनु की चेष्टा तथा व्यापार का निमित्त अपना आत्मा है। अतः मनुष्य को उचित है कि अपनी आत्मशक्ति को प्रधान समझकर स्वयं अपने साधनों को समर्थ बनावे और उनका उचित प्रयोग करके लाभ

उठावे वरन् सब साधन अनुपयुक्त होके धीरे २ अपनी प्रकृति में लीन होजावेंगे क्योंकि नैमित्तिक धर्म का विच्छेद होने पर वस्तु निज कारण की ओर गति करता है, जैसे "लोष्टः क्षिप्तो बाहु वेगं गत्वा नैव तिर्यग्गच्छति नोर्ध्वमारोहति पृथिवी विकारः पृथिवीमेव गच्छति" (महाभाष्य) मिट्टी का ढेला ऊपर फेंका हुआ बाहुवेग की समाप्ति के अनन्तर न आगे ऊपर चढ़ता है न इधर उधर टेढ़ा होता है। किन्तु पृथिवी का कार्य होने से पृथिवी पर ही आता है। इसी प्रकार इस तनु में नैमित्तिक क्रिया का संचार करने से इसकी उपयुक्त गति और स्वरूपतः स्थिति बनी रहेगी वरन निज कारण में लीन होने के लिये नम्री भाव होजाना अति सम्भव है। वस्तुतः इन तनुगत साधनों से कार्य लेना ही इनकी स्थिरता और शक्ति को चिर-कालीन रखना है। कागज़ का टुकड़ा विना नैमित्तिक क्रिया के भूमि पर पड़ा २ अल्प दिवसों में ही मिट्टी होजाता है। किन्तु यदि उसमें बारम्बार क्रिया संचार तथा शोधन-व्यवहार किया जावे तो वह सौ वर्ष से भी अधिक समय तक ठहर सकता है। यही दशा अन्य वस्तुओं के साथ भी है। लकड़ी यदि नैमित्तिक क्रिया से शून्य होकर भूमि पर ही पड़ी रहे तो कुछ वर्षों में मिट्टी बन जावेगी प्रत्युत यदि मेज़, कुर्सी वा अन्य वस्तु बनाकर रखें जिनमें नैमित्तिक संचार बारम्बार

होता रहे तो सैकड़ों वर्षों तक यथास्वं बनी रहे । यही दशा शरीर की है । यदि शरीर मैत्तिक क्रिया का अभाव कर दिया जावे तो निःसन्देह यह अपने कारणरूप पृथिवी में लीन होजावेगा यानि शनैः शनैः मिट्टी बन जावेगा । लाहौर में गुरुदत्त भवन के समीप मुझे एक जोड़ की हड्डी मिली, वह बहुत पुरानी दिखलाई पड़ती थी । मैंने जिज्ञासा भाव से उसके टुकड़े कर डाले वह बाहर भीतर से सपिण्ड थी अन्दर का आकार तथा रंग मलिन खिर्या मिट्टी की न्याई था । चमकदार कण भी उसमें दीखते थे । यह एक बड़े आश्चर्य की बात है कि मनुष्य अन्न खाता है, और पहिले उसका रस बनता है । उससे रक्त और फिर हड्डी, इस क्रिया में किस प्रकार अदृश्य रुप से मिट्टी हड्डी तक पहुंचती है ? उपनिषद् में भी यही कहा है कि "हे श्वेतकेतो योऽस्यान्नस्य स्थविष्ठो भागस्तस्यास्थीनि सम्पद्यन्ते" ।

अन्न के स्थूल भाग की हड्डियां बनती हैं । अन्न में मिट्टी का भाग प्रचुर है । जब अन्न खाती में अधिक समय तक बन्द रह जाता है तो वह मिट्टी होजाता है उसको लोग भगर कहते हैं अतः शरीर को विना नैमित्तिक संचार के तो निकम्मा ही बनाना है । आपने बहुधा देखा होगा कि हठयोगी-साधु अपने एक हाथ से काम न लेकर सुखा देते और निकम्मा कर

देते हैं। आंखों पर भी यदि पट्टी बांध कर वर्ष छः मास विचरें तो निःसन्देह मनुष्य अन्धा हो जावेगा। यही प्रकार बुद्धि आदि सूक्ष्म साधनों के प्रति समझें यदि बुद्धि से काम न लिया जावे तो अवश्यमेव बुद्धि का प्रलय होजाना सम्भव है। अतः प्रत्येक साधन में उसकी प्रवर्तना के अनुसार संचार की आवश्यकता है। वस्तुतः संचार से शक्तियां प्रवाहित होती हैं, प्रवाहित होने से संस्कृत तथा विकसित और प्रवृद्ध होती हैं। जैसे नदी का जल निज मण्डल अर्थात् आयतन (भण्डार) में प्रवाहित होने से शुद्ध और बलिष्ठ रहता है, ठीक इसी प्रकार गोलकरूप इन्द्रियां मण्डल (भण्डार) की न्याईं हैं और उनकी निज शक्तियां जल समान हैं। इन्द्रिय शक्तियों में संचार होने से संस्कृत, विकसित और प्रवृद्ध होती हैं, वरन् विना संचार के जैसे नदी का जल दूषित होजाता है एवं ही इस तनु में वर्तमान बुद्धि आदि साधनों का निकम्मा होजाना अति सम्भव है, तथा असिद्ध और अनुपयुक्त होकर संसार में तनुभार निष्प्रयोजन है। अन्यच्च इन्द्रिय शक्तियों का संचार भी यदि दुर्व्यसनों मे किया गया तो भी श्रेयः नहीं है, क्योंकि जैसे नदी में संचार होने से जल सुगुण होता है किन्तु मलिन स्थानों में को संचार होने से दुर्गुण भी आजाते हैं प्रत्युत जब जल भूमि-रूपी निकृष्ट मण्डल को छोड़कर ऊपर की ओर उत्स्रव

(फव्वारे) की दशा में संचरित होता है तो वह अत्यन्त सुगुण और इतना निर्मल होजाता है कि भूमि के मृदंशु या बालू भी सम्पर्क नहीं करता। बस इसी प्रकार जब मानवीय शक्तियां भी किसी सुकृत मार्ग में संचार करती हैं तो वे बलिष्ठ, विकम्पित और प्रवृद्ध होजाती हैं। मानव धर्म भी यही है कि दैव की ओर से जो शक्तियां हमें अंकुर रूप में मिली हैं उनका अंकुर से वृक्ष की भांति विकास और संवर्धन करें। अस्तु। इनके विभागशः विकास तथा संवर्धन का प्रकार अगले सप्ताह में सुनना।

मानवीय—विकास

(संख्या २)

शिष्यः—गुरुदेव ! गत सप्ताह में मानवीय शक्तियों का सामान्य परिचय प्राप्त किया, अब मैं यह चाहता हूँ कि इन शक्तियां के विभागशः विकास और संवर्धन का प्रकार बतलाने का अनुग्रह करें।

गुरुः—हां वत्स ! सुनो, मनुष्य के पास तीन प्रकार के साधन हैं जिनमें हस्तादिकर्मेन्द्रियां स्थूल साधन तथा नेत्रादि ज्ञानेन्द्रिया सूक्ष्म साधन और मन-बुद्धि-चित्त-अहङ्कार नाम से अन्तःकरण चतुष्टय अति सूक्ष्म साधन है। इन में से हस्तादि कर्मेन्द्रियों तथा तदायतन शरीर की शक्तियों के विकास और संवर्धन तो गत सप्ताह में उपदिष्ट सञ्चार नियम अर्थात् नानाविध व्यायाम द्वारा होता है। यह एक वैयक्तिक कर्मेन्द्रियों या शरीर की शक्तियों के विकास और संवर्धन का प्रकार है प्रत्युत सामाजिक का प्रकार यह है कि "समितिः समानी" (ऋ० अ० ८।८।३) समाज गत सभी व्यक्तियों का किसी भी क्षेत्र में प्रयतन एक हो। युद्धव्यूह के नियमा-

नुसार सम्पूर्ण वीर दल का पादाक्रमण, दण्डनिपातन, शस्त्रप्रहार और वाणी का ललकार एक हो न कि भेड़ बकरी के समान समय पड़ने पर कोई कहीं और कोई कहीं। दल की एकता का कारण "समानो मन्त्रः" (ऋ० अ० ८। ८। ३) है। दल के प्रत्येक व्यक्ति का उद्देश्य या मन्तव्य एक होना चाहिये न कि किसी का मन्त्र सीताराम और किसी का राधेश्याम इत्यादि। दल की एकता का निमित्त वेद में एक और भी बतलाया है और वह यह कि "समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि। सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारानाभिमिवाभितः।" (अथ०। ३। ३०। ६) दूध व जल पीने के पात्र एक हों स्थान समान हो परस्पर एक दूसरे के हाथ का पी सकते हों और भोजन खाने के वर्तन एक हों तथा स्थान भी एक हो यानि खान पान सर्वथा एक होजाने से एकता के सूत्र में सब ओत प्रोत होजाते हैं। अन्तर्यामी जगदीश देव का निर्देश है कि जब तुम्हारा खान पान एक होजायेगा तो मैं एकता के योक्त्र सङ्गठन सूत्रमें सङ्गठित कर दूंगा फिर किसी भी अग्नि को प्रदीप्त करो तो अरा नाभि की न्याईं पृथक् न होसको।

शिष्यः—आचार्यवर ! कर्मेन्द्रियों के सम्बन्ध में तो पर्याप्त सुन चुका अब ज्ञानेन्द्रियों के विकास का प्रकार समझना चाहता हूं ।

गुरुः—अन्तेवासिन् ! " चित्तमयस्कान्तमणिकल्पम् " (योग १।४ पर व्यास) अयस्कान्त मणि (चुम्बक पत्थर) की न्याई मन है, वह अपने केन्द्र से आकर्षण की धाराएं फेंकता है जो कि उसके विषय को आकृष्ट करके ले आती हैं। उन्हीं आकार्षण धाराओं की सङ्गति से इन्द्रियों में भी आकर्षण शक्ति आ जाती है जिससे इन्द्रियां भी अपने विषयों को खींच लेती हैं। जैसा कि अयस्कान्त पत्थर से सङ्गत हुई लोह सूई दूसरी लोह सूई को खींचने में समर्थ हो जाती है । बस अब यह सिद्ध हुआ कि जिस इन्द्रिय की शक्ति का विकास व संवर्धन इष्ट हो उस इन्द्रिय के साथ मन की एकता यानि पूरी सङ्गति होनी चाहिये तभी मनुष्य किसी भी वस्तु के यथार्थ स्वरूप को समझ सक्ता है। यही योग दर्शन में भी कहा है। " यस्त्वेकाग्रे चेतसि (समाधिः) सद्भूतमर्थं प्रद्योतयति " (योग १।१ पर व्यास भाष्य) मनुष्य जब चन्दन की गन्ध नासिका से ग्रहण करता है तो उस समय वह साधारण होती है। किन्तु जब मन

की एकतानता से चन्दनगन्ध का अनुभव करता है तो वह पूर्व गन्ध से कई गुणा उत्तम प्रतीत होती है। एवं उत्तरोत्तर अभ्यास की दृढ़ता से फिर वह गन्ध अद्भुत प्रतीत होने लगती है यानि उस गन्धको जो मूल स्वरूप है वह नासिका-केन्द्र में केन्द्रित हुई सूंघने वाले को विस्मित और प्रमोदित कर देती है। अपि च मन के गम्भीर लगाव से नासिका को एक ऐसी शक्ति विकसित होजाती है कि जिससे चन्दन की अनुपस्थिति में भी उसकी बड़ी रोचक और मधुर गन्ध को अनुभव करता है। इसी प्रकार जिह्वा, नेत्र, त्वचा, और कानों की भी अलौकिक शक्तियों का विकास होजाता है, जिनसे दिव्य रस आदि का साक्षात् होता है। इन्द्रिय-शक्तियों के विकसित करने का यह एक संक्षिप्त प्रकार कहा है, इसके आगे अति सूक्ष्म साधन यानि अन्तः-करण चतुष्टय की शक्तियों के विकास-सम्बन्ध में परिचय देंगे।

मानवीय—विकास

(संख्या ३)

शिष्य—गुरुदेव ! नमोऽस्तुतराम् ।

गुरुः—आयुष्मानो भवान्तेवासिन् ।

शिष्यः—पूज्य वर ! प्रचलित क्रम में गत सप्ताह से आगे सम्प्रति अन्तःकरण चतुष्टय यानि मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार की शक्तियां कैसी और कितने प्रकार की हैं तथा उनका विकास कैसे किया जाता है। इस रहस्य के समझाने की अनुकम्पा करें ?

गुरुः—प्रिय पुत्र ! हां सुनो गत सप्ताह के शिक्षण में प्रसङ्गतः मैंने एक बात बतलाई थी जो आप को स्मरण होगी कि मन अयस्कान्त मणि के तुल्य है, इतना ही नहीं प्रत्युत "केनेषितं पतति प्रेषितं मनः" (केनोपनिषद् १ । १) केनोपनिषद् के रचयिता ऋषि महाशय किसी एकान्त और शान्त स्थान में समासीन हैं उनके सम्मुख बाहर और भीतर की दो सृष्टियां हैं। बाह्य जगत् के अग्नि आदि देव और आन्तरिक सृष्टि के मन आदि पदार्थ अपना २ गम्भीर परिचय देते हुए आत्मदर्शन कराते हैं। प्रथम आन्तरिक सृष्टि में से मन अपनी अद्भुत

लीलाएं दिखाता है, ऋषि विस्मित होजाते हैं और उनकी भावना होती है "केनेषितं पतति प्रेषित मनः" "किस अन्तर्यामी देव की प्रेरणा से यह मेरा मन विद्युत् की भांति अपने विषय स्थान में पतन करता है । ऐसा कौन देव है जिसने इतना अद्भुत यह मन बनाया। बाहर के जगत् में जैसे विद्युत् है, एवं आन्तरिक सृष्टि में यह मेरा मन है जैसे बिजुली की चमक और उसका पतन क्षणान्तर में ही विरुद्ध दिग्देश में होजाता है एवं यह मन भी क्षणान्तर में पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व में पहुंच जाता है। अहो! तीव्र गति इस मन में किसने और कैसे स्थिर की।"

ऋषि की उक्त भावना से यह विस्पष्ट सिद्ध हुआ कि मन में वैद्युत शक्ति है इसी लिए वेद में कहा है कि "यस्मान्नृते किंचन कर्म क्रियते०" जिस मन के विना मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता यानि जिस मन की वैद्युत संक्रान्ति से सब कुछ किया जाता है। वह मेरा मन शुभ सामर्थ्य वाला हो। तथा स्मृतिग्रन्थों में भी कहा है "यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति" वेदों उपनिषदों और स्मृति-ग्रन्थों में मन की वृत्तियां जो २ स

वर्णित हैं वे सभी ऋषि के सम्मुख अपना २ चित्र खींच रही होंगी। मन बड़ी तीव्र गति से अपनी लीलाएं दिखलाता होगा। हम संक्षेप से मन की उन लीलाओं का वर्णन कर देना उचित समझते हैं :—

"यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरं गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु" (यजुः। अ० ३४। म० १)

यह मन जागते हुए बहुत दूर उत्क्रान्ति करता है और सोते हुए भी उसी प्रकार उत्क्रान्त होजाता है। एवं दूर जाने वाला ज्योतियों का ज्योति यानि विद्युत् रूप यह मेरा मन कल्याण-वृत्ति वाला हो। तथा "येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।" (यजु०। अ० ३४। म० ४)

जिस अशेषशक्ति मन के द्वारा समग्र व्यतीत-विषय स्मृति पथ आजाता है, जिससे वर्तमान का वृत्त उपस्थित रहता है और जिससे भविष्य का भी निश्चय कर लेते हैं हे प्रभो! वह मेरा मन दृढ़-धारणा वाला हो। अपि च "यस्मिन्नृचः सामयजुंषि प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः" (यजुः अ० ३४। म ५) रथनाभि

मे अगों के समान जिस मन मे ऋग्, यजुः, साम रूप से त्रयी विद्या संश्लिष्ट होजाती है वह मेरा मन सत्य-प्रदर्शक बने।

सज्जनो ! हमारे पास यह मन है, एक ऐसा साधन है कि जिसमे अद्भुत शक्तियां हैं संसार में जितनी कला कौशल और ज्ञान विज्ञान प्रचलित हैं उन सब का मूल मन में स्थिर हुआ पश्चात् बाहर विकसित हो गये, एवं यह मन बड़ा अद्भुत है अत एव ऋषि ने कहा "केनेषितं पतति प्रेषितं मनः"।

शिष्यः—गुरुवर ! लोग कहते हैं कि मन अपने विषय पर जाता है, किन्तु आपने तो "इषितं पतति" इष्ट विषय पर विद्युत् की भांति आकर्षण धाराओं से पतन करता है ऐसा कहा है। इस में क्या तत्व है ?

गुरुः—अधिकारिन् ! गौणरूप से ऐसा कहा जाता है कि मन अपने विषय पर जाता है, प्रत्युत मनोविज्ञान ऐसा नहीं बतलाता। इसी केनोपनिषद् के अन्त में ऋषि ने कहा है "गच्छतीव च मनः" (केन० ख० ४।५) मन जाता हुआ जैसा प्रतीत होता है वस्तुतः स्वयं नहीं जाता किन्तु मन की आकर्षण धाराएं अभीष्ट वस्तु तक

पहुँचती हैं और उसको मन के केन्द्र में खींच लाती हैं। अयस्कान्त मणि भी स्वयं लोहे की ओर नहीं जाता किन्तु उसकी आकर्षण धाराएं फैलती हैं जो लोहे को खींच लाती हैं। विद्युत् के आकर्षण का सिद्धान्त भी यही समझें इसी प्रकार सूर्य्य भी पदार्थों तक स्वयं नहीं पहुँचता किन्तु उसकी आकर्षण धाराएं यानि रश्मियां पहुँचती हैं। इस लिये यह सुनिश्चित समझना चाहिये कि मन शरीर से पृथक् होकर अपने विषय पर नहीं जाता। यदि मन चला जावे तो वह पुनः वापिस न आ सके क्योंकि मन जड़ वस्तु है और जड़ वस्तु पुनः यथास्थान पर स्वयं नहीं आसकता जैसे हस्त, नेत्र आदि अङ्ग एक वार शरीर से अलग होकर पुनः यथा स्थान पर नहीं स्थिर हो सकते। अतः मन वस्तु-रूप से गति नहीं करता है प्रत्युत इसका धाराएं ही गति करती हैं"।

शिष्यः—पूज्य देव ! क्या मन भी कोई सस्वरूप वस्तु है ? यदि है तो कैसा ?

गुरुः—प्रेष्ठ ! अकेला मन ही सस्वरूप वस्तु नहीं प्रत्युत "मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार" ये चारों ही स्वरूप वाले

पदार्थ हैं देखो सत्यार्थप्रकाश के नवम समुल्लास में ऋषि दयानन्द लिखते हैं कि " नित्य प्रति न्यून से न्यून दो घण्टापर्यन्त मुमुक्षु ध्यान अवश्य करे जिस से भीतर के मन आदि पदार्थ साक्षात् हों " हमारे सामने जिस प्रकार यह पुस्तक या गौ किंवा अग्नि आदि पदार्थ अपना स्वरूप रखते हुए प्रतीत होते हैं उसी प्रकार मन आदि आन्तरिक पदार्थ भी स्वरूपतः प्रत्यक्ष होते हैं किन्तु बाह्य प्रत्यक्ष और आन्तरिक प्रत्यक्ष का ही विरोध है। बाहर में तो केवल " युगप ज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम् " (न्याय। १। १। १६) अनुमान ही किया जाता है क्योंकि जीवात्मा का सम्बन्ध जब कि प्रत्येक इन्द्रिय और सब नाड़ियों के साथ है। तो जीवात्मा को सर्वकाल में सभी इन्द्रियों का एक साथ ज्ञान होना चाहिये, प्रत्युत नहीं होता। दर्शनों में इसका समाधान यही किया गया है कि मन एक ऐसा साधन है जो कि सर्वकाल में एक साथ ज्ञान होने में रुकावट का निमित्त है। भाव यह है कि मन जिस इन्द्रिय के साथ सङ्गत होता है उसी के विषय का बोध आत्मा करता है। क्योंकि जैसे हम अपने हाथ से जिस

वस्तु को उठाते हैं वही उठता ह न कि संसार के सारे पदार्थ मन तो दूर रहा नेत्र आदि इन्द्रियों को भी न्याय दर्शन में अनुमान द्वारा सिद्ध किया है। किन्तु योग-दृष्टि से तो इन्द्रियों और मन आदि का भी आन्तरिक प्रत्यक्ष हो जाता है। मन से सङ्कल्प और विकल्प किया जाता है। बुद्धि सन्देह और निश्चय करती है। चित्त से भूत और भविष्यत् का स्मरण किया जाता है और अहङ्कार से ममता व अहम्भाव का सेवन होता है। इस प्रकार मन आदि आन्तरिक पदार्थों के ये दो दो धर्म या मार्ग हैं (शेष आगामी सप्ताह में)

मानवीय—विकास

(सं० ४)

शिष्यः—आचार्यचिन्नमस्यामि भवन्तम् ।

गुरुः—स्वस्ति ते वत्स ३ ।

शिष्यः—मान्यदेव ! कुछ लोग प्रेतात्माओं को बुलाते हैं (Spiritualism) इस विषय का मन या मनोविज्ञान के साथ कितना सम्बन्ध है तथा इस में तत्व क्या है ?

गुरुः—प्रिय शिष्य ! गत वर्ष जिस समय मैंने इस विषय को चर्चा इधर उधर सुनी जब कि कई एक आर्य पुरुष भी इस प्रथा के विश्वासी बन गये थे यानि मरने के पश्चात् जीवात्माएं किसी स्थान विशेष में रहते हैं और उनका पुनर्जन्म नहीं होता। एवं मृतक के लिये श्राद्ध करना तथा उस तक पहुंचने की कल्पना हुई । इस प्रकार सिद्धान्त सम्बन्धी अशान्ति को देख तथा कई एक महानुभावों के कहने पर मुझे भी इसके परीक्षण और अनुसन्धान करने में बाध्य होना पड़ा। अन्तेवासिन् ! इस से पूर्व मेरे माननीय मित्र प्रोफैसर जगदीश मित्र जी के सहयोग से हिप्नोटिज़म् के सिद्धान्तों का परिचय

हो चुका था और उसके भी क्रियात्मक परीक्षण किये थे। क्योंकि कुछ वर्षों से योग-विद्या की ओर मेरी रुचि थी। जहां अन्य साधुजनों से इसके विषय में कुछ लाभ उठाया वहां हिप्नोटिज़म् को भी योग की शाखा समझ कर परिचय प्राप्त किया था। तत्पश्चात् प्रेतात्मा के बुलाने का परीक्षण करना भी स्थिर किया था। अब तक इसके विषय में जो जो परीक्षण किये हैं। उनको संसार के सम्मुख अपना कर्तव्य समझ कर रखता हूं।

इस विषय में मेरे परीक्षण—

मैंने इस प्रथा के परीक्षणार्थ प्रेतात्मा के नाम से तथा जीवितात्मा के नाम से बुलाया। एक बार मैंने विद्युत् के नाम से भी बुलाया। क्योंकि मेरे मन में इस के विषय में यह सिद्धान्त स्थिर हुआ था कि जिस वस्तु का हम विचार करेंगे उसी वस्तु का आगमन होगा। जब हम कई एक व्यक्तियों ने विद्युत् शक्ति का विचार किया तो इस विधि के अनुसार मेज़ हिला तथा एक हृष्ट पुष्ट मनुष्य के भीतर विद्युत् शक्ति का प्रवेश अनुभव हुआ पुनः उस मनुष्य से पूछा गया कितने घोड़ों का बल है, अधिकारी ने १२ घोड़ों की शक्ति कही। फिर जो

भी प्रश्न किये उनका उत्तर अधिकारी ने बड़ी शीघ्रता से लिखा। तब हमने उस से यह भी कहा कि पास बैठने वालों को कोई ऐसा विद्युत् का चमत्कार दिखलाओ जिस से देखने वाले चकित हो जावें। तब अधिकारी का शरीर एक दम भड़क उठा और कुर्सी से नीचे गिर पड़ा। उसे बड़ी कठिनता के सम्भाला गया, एक और व्यक्ति में विद्युत् का फोर्स १६ घोड़ों की शक्ति का बुलाया था और उसको ५-६ मनुष्यों ने सम्भाला। इसी प्रकार जल तरङ्ग तथा शुद्ध चेतन रूप आत्मा का आह्वान भी किया गया, प्रथम-प्रेतात्मा के द्वारा भी कभी २ द्वितीय-प्रेतात्मा व बिजुली को बुलाया। अधिकारी का हाथ बड़े वेग से हिलवाया। इसके अतिरिक्त इस विषय में एक यह भी ख्याल मन में आया कि हम अधिकारी को दूर स्थान में भी भेज सकते हैं। इस लिये हमने एक अधिकारी को बम्बई को सैर के लिये भेजा और दूसरे को बाग की सैर को। तथा उसे कहा गया कि यह बाग की सैर होश आने पर याद रहे तो अधिकारी को बाग की सैर इस भांति याद रही कि मैं बहुत थक गया हूं और मुझे मीलों चलना पड़ा। बाग बड़ा सुन्दर और उस में सरोवर व झूला आदि

आनन्द की सामग्री थी। तथा एक अन्य व्यक्ति ने कहा कि मुझे दो सौ तीन सौ मील पैदल चलना पड़ा उसने टांगों और कमर में दर्द स्वप्नावस्था में भी अनुभव किया जिसको हिप्नाटिक ढंग से तत्काल ही दूर कर दिया था। प्रेतात्मा के साथ विमान पर बैठ कर हिमालय की सैर करना, चन्द्र-विस्तार का दर्शन आदि आदि भी करा गया। अस्तु। अब हम इसके कारणों पर प्रकाश डालते हैं :—

प्रेतात्मा आती है या नहीं:—

प्रेतात्मा वास्तव में नहीं आती यदि आ जाती हो तो इसी प्रकार जब हम जीवित आत्माएं बुलाते हैं जैसे महात्मा गान्धी आदि। तो उस समय आत्मा के आ जाने से शरीर छूट जाना चाहिये किन्तु ऐसा नहीं होता, अपि च इस के अतिरिक्त हमने बिजुली तक बुलाई है। अतः प्रेतात्मा का आना असिद्ध है।

---

* ये परीक्षण दयानन्द ब्राह्ममहाविद्यालय लाहोर, श्री नगर (कश्मीर) और देहली में किये गये।

कुछेक महानुभाव मेज़ के हिलने और अधिकारी के बेहोश हो जाने तथा यथेष्ट प्रश्नों के उत्तर मिलने पर यह समझते हैं कि प्रेतात्मा न आती हो किन्तु किसी विशेष विचार-शक्ति का आगमन अवश्य होता है जिस को प्रेतात्मा, जीवितात्मा या बिजुली आदि कल्पित नाम दे देते हैं। हम इस विषय में इतना उत्तर अवश्य देना चाहते हैं कि जिन कारणों से यह सब बातें होती हैं उन में कोई भी अदृष्ट-शक्ति ऐसी नहीं है जिसका कोई स्वरूप हो। अब यह है तो :—

मेज़ क्यों हिलता है :-

इस में तीन ही पाय का मेज़ नहीं किन्तु चार पाय का मेज़ भी इस्तेमाल कर सकते हैं। केवल वह हलका और छोटा होना चाहिये। ऐसे मेज़ को एक किसी समस्थल भूमि पर ऐसे ढंग से रक्खा जावे जो हाथ के थोड़े सङ्केत से ही हिलने लगे। उस मेज़ के चारों ओर एक-दो-तीन या चार व्यक्तियां मेज़ से कुछ थोड़े अलग करके बिठला दी जावें (कुछ लोग यह समझते हैं कि अकेली व्यक्ति के बिठाने से प्रेतात्मा आदि विशिष्ट का आगमन नहीं होता परन्तु प्रतिकूल

इस के हमने एक व्यक्ति से भी काम लिया है) और मेज़ के ऊपर हाथों को इस ढंग से रक्खें कि हाथों का भार मेज़ के ऊपर न पड़े और ना ही स्वयं हिलाने की चेष्टा की जावे। प्रत्येक व्यक्ति प्रेतात्मा-जीवितात्मा बिजुली की शक्ति आदि का गहरा विचार करे। अर्थात् अपने आपको भुलाया हुआ समझकर उसी में मग्न हो जावे। ऐसा करने में शरीर के भीतर नस नाड़ियों में प्राण की गति तीव्र हो जावेगी और शरीर में कुछ कम्पन जैसा भी प्रारम्भ होगा, जिस से हाथ के स्पर्श के कारण मेज़ हिलने लगेगा। जिस समय मेज़ हिलने लगे आप सब ऊपर से हाथ उठालेवें तो मेज़ हिलना बन्द हो जावेगा, आप कितना ही कहें कि प्रेतात्मा मेज हिलाय विना हाथ मेज़ हरगिज़ न हिलेगा, कर देखें।

अधिकारी में प्रवेश कैसे होता है:-

मेज़ के हिलने से उसके चारों ओर बैठी हुई व्यक्तियां प्रभावित तो हो ही चुकीं हैं उधर मेज़ की टिक संख्या को कोई व्यक्ति अपने ओर आते देख कर विशेष प्रभावित हो जाती है। और अपने अन्दर उस अपने प्रेतात्मा आदि प्रिय वस्तु को तन्मयता से अनु·

भव करने लगती है क्योंकि मेज़ के हिलने की प्रथम क्रिया से प्रभावित हुई सभी व्यक्तियों का यह जबरदस्त ख्याल हो जाता है कि मेरा प्यारा आत्मा आया अतः मेरी ओर मेज़ की टिक संख्या रुक जावे, किन्तु जिस व्यक्ति का ऐसा गहरा विचार होता है उसके ऐसे आन्तरिक विचार से मेज़ की टिक संख्या को अपनी ओर रोकने के लिये स्वभावतः दबाव या यत्न होता है जिस से मेज़ की टिक संख्या रुक जाती है। इस प्रकार फिर तो वह व्यक्ति अत्यन्त तन्मयता से सब कुछ भूल कर अपने अन्दर उस प्रेतात्मा आदि को गूढ़ रूपसे अनुभव करती है। यहां तक कि अपनी सत्ता को भी भूली हुई जैसी हो जाती है।

३. अधिकारी क्यों लिखने लगता है :-

वह महाशय अपने आपको भूल कर प्रेतात्मा आदि की तन्मयता को तो प्राप्त हो ही चुका होता है। पुनः प्रयोजक के अधीन होकर लिखने लगता है। जैसे जैसे प्रश्न प्रयोजक करता है वैसे वैसे उत्तर लिखता चला जाता है। जिन जिन प्रश्नों के उत्तर उसे पूर्व से ज्ञात होते हैं उनके उत्तर सत्य लिखता है। और जिनका
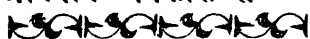
परिचय नहीं होता उनके उत्तर या तो लिखता ही नहीं यदि लिखता भी है तो मिथ्या होते हैं, घुणाक्षर-न्याय से कोई उत्तर सत्य निकल आता है। वरना सब मिथ्या होते हैं। तन्मयता के कारण अपने आपको प्रेतात्मा आदि समझने लगता है। और नाम भी अपना वही लिखता है जो प्रेतात्मा आदि का था। देहान्त का कारण और तिथि आदि भी लिख देता है। होश आने पर अपने लेख से नकारी हो जाता है कि मैंने नहीं लिखा। पुनः प्रयोजक के कहने से होश में भी आ जाता है। हमने कई बार बिना मेज़ के भी इसके परीक्षण किये हैं किन्तु मेज़ की अपेक्षा यह प्रकार कठिन है इस अवस्था में हिप्नोटिस्ट ही बिना मेज़ के कर सकता है जिस के प्रभाव से उपस्थित व्यक्ति प्रेतात्मा आदि की तन्मयता का भान करने लगती है। अस्तु। यह इस प्रथा का स्वरूप है। अत एव इस अवैदिक तथा नीच और निःसार प्रथा से तुमको सदा अलग रहना चाहिये।

शिष्यः—गुरुवर! मैं अनुगृहीत हूं कि जिस प्रथा के प्रपञ्च में बड़े बड़े विद्वान् भी ग्रस्त और भ्रान्त हो गये उस का मर्म आपने जना दिया जिस से मैं वञ्चकों से बच सकूं। अच्छा! अब मैं जाता हूँ फिर आऊंगा मेरा नम्र नमस्ते।

मानवीय—विकास

(संख्या ५)

शिष्यः—गुरुवर ! नमोस्तुतराम ।

गुरुः—नमस्तेऽपि स्वस्ति ।

शिष्यः—आचार्य ! मेस्मरिज़म् और हिप्नोटिज़म् का स्वरूप क्या है तथा इनका योग के साथ कितना सम्बन्ध है। कृपया स्पष्ट समझाकर अनुगृहीत करें।

गुरुः—जिन क्रियाओं या वाग्धाराओं से दूसरों को प्रभावित कर देते हैं उनका नाम मेस्मरिज़म् और हिप्नोटिज़म् है। यद्यपि मैं इनका विस्तृत प्रकार और स्वरूप बतलाऊंगा तथापि इस विषय में प्रथम अपने परीक्षण सम्मुख रख देना उचित समझता हूँ।

मेरे परीक्षण :—

१—बहुतेरी व्यक्तियों को पीछे और आगे की ओर गिराया।

२—एक साथ बहुत मनुष्यों को भी पंक्ति बद्ध आगे खींचा।

३—अनेक महाशयों को लेटाकर, बिठलाकर, खड़े करके नींद में प्रभावित (बेहोश) किया अपि च दूरस्थ महानुभावों को भ सुलाया।

४—गहरी नींद में इस प्रकार भी सुलाया कि निर्दिष्ट समयानुसार स्वयं ही जाग उठा।

५—सुषुप्ति में ले जाकर कुछ बातें भी पूछीं।

६—बिना रस्सी के वाग्धारा (मजेरान्) से हाथ भी बांधे।

७—कुरसी पर भी कई व्यक्तियों को चिपकाया।

८ अधिकारी का नाम भी भुलवाया।

९—कोई कोई व्यक्ति तो थोड़े ही हाथ का सङ्केत होने या सो जाओ इतना ही कह देने पर तत्काल सो गये।

१०—बिल्ली की आवाज भी देर तक बुलवाई।

११—एक व्यक्ति को कहा गया कि तुम्हारे भ्राता के ऊपर तुमको सांप ही सांप दिखलाई पड़ेंगे तुम उनको हटाना; उसको इस प्रकार सर्प दर्शन हुआ कि आंखों से चश्मा तक उतार लिया और कहा कि इसको मारूंगी यह काट लेगा तभी मैंने ऐसा देख प्रयोग समाप्त किया।

१२—अपने हाथ पर अधिकारी का हाथ चिपकाया और वह पृथक् न कर सका।

१३—अधिकारी के हाथों को बद्धाञ्जलि के रूप में इतना चिपकाया कि वह स्वयं तो दूर कर ही न सका किन्तु अन्य व्यक्तियों को भी अलग करने पर अत्यन्त बल लगाना पड़ा।

१४—एक व्यक्ति को कहा गया कि मेरे तीन कहते ही रोने लगोगी जब तक मैं न बन्दन करूंगा बराबर रोती ही रहोगी। वह व्यक्ति इतनी रोती थी की अश्रुपात भी हो गये और पारिवारिक जनों के रोकने पर भी नहीं रुक सकी।

१५- इसी व्यक्ति को हंसाया भी गया।

१६—अधिकारा को कहा गया कि मेरे तीन कहने हो तुम को सर्वत्र पुष्पागार (फूलों के पाटे) ही दिखलाई पड़ेंगे तुम सब के ऊपर में फूल तोड़ना। उसने अनेक वस्तुएं सञ्चित कर डाली और बैठे हुए मनुष्यों की शिखाएं भी फूल समझकर खींच लीं।

१७ -सुला कर दूर भी सैर करने को भेजा गया।

१८—सर दर्द आदि साधारण रोगों को भी दूर किया। एक व्यक्ति को इतना विश्वास हुआ कि केवल स्पर्श के साथ ही सर दर्द काफ़ूर हो गया।

१९—अपने हृदय के भावों को भी कुछ २ दूसरों तक पहुंचाया।

२०—हिप्नोटिज़म् के द्वारा भरे हुए विचारों का चेतन अवस्था में अनुभव कराया*।

* ये परीक्षण दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय लाहोर, गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ, खुर्जा आदि स्थानों में किये गये।

अब हम इसके कारणों पर प्रकाश डालते हैं :—

हिप्नोटिज़म् का स्वरूप और प्रकार

मेस्मरिज़म् और हिप्नोटिज़म् के सामयिक आचार्य इस की सिद्धि के लिये अनेक अभ्यास बतलाते हैं, उन अभ्यासों का पूरा विवरण उनकी पुस्तकों में प्रदर्शित है किन्तु यहां संक्षेप से दिग्दर्शन ही कराया जायगा। प्रत्युत इसका मर्म अवश्य बतलावेंगे। प्रारम्भ में वे महानुभाव त्राटक मुद्रा अर्थात् किसी सफ़ैद कागज पर रूपया या पैसा के बराबर काला चि ह बनाकर अपने बैठने के एकान्त स्थान में सामने भीत्ति आदि के ऊपर लगाकर उस से दो फुट दूरी पर बैठ कर लगातार टिकटिकी बांध कर कम से कम ४५ मिनट तक एक दृष्टि से देखने की विधि बतलाते हैं। ५ मिनट से प्रारम्भ करके लगातार अभ्यास करने २ इस से भी अधिक समय तक देखने का अभ्यास हो सकता है। कृष्णवर्ण की गम्भीरता में नेत्र वृत्ति के अत्यन्त लगाव से कदाचित् दृष्टि की डामाडोल अवस्था में भ्रान्ति से प्रकाशचक्र चलायमान सा प्रतीत होता है जो कि उसके कृष्ण विन्दु के एकतानता में तन्मयता का प्रमाण है इसी प्रकार विविध प्राणायाम, अभीष्ट शब्द ध्वनि का मनोवृत्ति से अनुभव तथा अन्तस्त्राटक यानि मन में किसी की

आकृति का चिन्तन इस प्रकार करना कि वह आकृतिवाला पदार्थ मानो साक्षात् सम्मुख उपस्थित है। एवं अनेक अभ्यास इस की सिद्धि में बतलाते हैं। मैंने प्रायः उन सभी अभ्यासों का अनुष्ठान किया और मर्म जानने की इच्छा की। अन्त में निश्चय हुआ कि आज कल के हिप्नोटिक प्रकार किसी दूसरे का वास्तविक सुधार करने में सच्चाई के साथ समर्थ नहीं हैं किन्तु वैदिक आदर्श प्रार्थना और उपदेश पर निर्भर है। जिन का फल सत्य सङ्कल्प और सदाचार के विना नहीं हो सकता। वर्तमान हिप्नोटिक प्रकार प्रेतात्मा के बुलाने (spiritualism) के समान गुप्त भेद से निःसार और अनभ्यास साध्य विषय है। उपर्युक्त अभ्यास के विना सभी परीक्षण किये जा सकते हैं, चुनांचे विना अभ्यास के भी विविध परीक्षण किये और कर सकता हूं। जिस प्रकार प्रेतात्मा के बुलाने में ७५ प्रति शतक अधिकारी भ्रान्त हो जाते हैं। इसी प्रकार हिप्नोटिज़म् में भी ७५ प्रति शतक अधिकारियों का भ्रान्त हो जाना स्वाभाविकता है। अत एव विना अभ्यास के भी अधिकारी पर अधिकार जमाना और काम लेना बन सकता है। अस्तु। जबकि प्रेतात्मा बुलाने की प्रक्रिया के समान हिप्नोटिज़म् मे भी भ्रान्त कर देने वाला कोई गुप्त भेद है तो वह क्या है सुनिये :

हिप्नोटिज़म् की सब से प्रथम क्रिया

१२ वर्ष से अधिक आयु वाली व्यक्ति को अपने सामने पराङ्मुख (पीठ करवाकर) खड़ा किया जावे और उसको कहा जावे कि मन को खाली करदो किसी प्रकार का विचार मन में मत रक्खो और आंखें भी बन्द करादो । इतनी क्रिया के अनन्तर उसको कहो कि मैं अपने हाथ में तुम्हारे सर के पिछले भाग को छूता हूं और तुमको पोछे की तरफ खींचता हूं जब तुम को पीछे आकर्षण प्रतीत हो तो अपने आपको सम्भालना मत मैं गिरने न दूंगा, ऐसा कह कर उसके सर के पीछे हाथ रखकर सजेशन करो कि मैं अब तुम को पीछे की तरफ खींचता हूं तुम अपनी जगह पर नहीं ठहर सकोगे इतना करने के साथ ही अधिकारी पीछे की ओर झुक जायगा और अपने आपको न सम्भाल कर अनुभव करेगा कि मैं पीछे की ओर गिर रहा हूँ इस प्रकार उत्तरोत्तर पीछे की ओर झुकता चला जायगा बस यह हिप्नोटिज़म् की प्रारम्भिक और मौन क्रिया है । जो कि प्रति शतक ७५ पर प्रभाव डाल देती है यानि जिन लोगों के मन में गिरने के प्रतिकूल विचार हों या कि जिनका शरीर ढीला न हुआ हो अथवा जिनका इधर विश्वास न हो वे महाशय कदापि नीचे गिर नहीं सकते । कारण स्पष्ट है कि जिस व्यक्ति ने अपने मन को खाली कर दिया और आंखें

भी बन्द करलीं इस प्रकार अध निस्साहस होकर जब शरीर को ढीला करके प्रयोजक (हिप्नोटिस्ट) के कहने पर पीछे झुकता है और अपने आपको नहीं सम्भालता है तो स्वभावतः पीछे गिरना अनुभव करता है और साथ में महसूस करता है कि प्रयोजक (हिप्नोटिस्ट) के प्रयोग से मेरा पीछे की तरफ झुकाव हुआ। इस प्रकार भ्रान्ति से प्रभावित होकर उत्तरोत्तर यह महसूस करता हुआ नीचे गिरता चला जाता है। पुनः इस प्रभावित व्यक्ति को सामने की तरफ से भी केवल देख कर गिराया जा सकता है। यानि उस प्रभावित व्यक्ति को प्रयोजक कहता है कि मेरी तरफ देखो अब मैं तुमको आगे की तरफ खींचता हूँ, ऐसा कह कर उसकी ओर हाथ करके अपनी तरफ खींचता है या स्वयं कुछ पीछे की तरफ हटता जाता है तो अधिकारी प्रथम क्रिया से प्रभावित हुआ आगे की तरफ जल्दी खींच आता है। ऐसे प्रभावित हुए अधिकारी को जोर से कह दिया जाता है कि मैं तुमको सुलाता हूं तुम सो जाओगे मैं १० गिनता हूं * तुम्हारी आंखें बन्द हो जायेंगी और तुम्हें नींद आ जायगी इस प्रकार प्रबल शब्दों में कहने से विश्वास की अन्ध-श्रद्धा तथा प्रभाव से अपने आपको सोता हुआ अनु-

---

* १० मिनट पर निर्भर नहीं है किन्तु ३, ५, ७, १० आदि यथेष्ट अधिकारी को देखकर कह सकते हैं।

भव करेगा और सो जायगा। इसी प्रकार उसका नाम भुला देना और उसके हाथ बांध देना या कुत्ता बिल्ली आदि की ध्वनि कराना, हंसाना, रुलाना आदि सहस्रों प्रयोग किये जा सकते हैं। केवल प्रयोजक के जोरदार शब्द हों और प्रयोगकाल में नेत्रादि अङ्गों की चेष्टाएं अभिभूत करने वाली हों। वस्तुतः अधिकारी को प्रयोजक पर विश्वास होने की आवश्यकता है। प्रथम क्रिया से प्रभावित किये विना अन्य प्रयोगों का होना दुष्कर है। कभी कभी विना प्रथम क्रिया के भी प्रयोग हो जाते हैं किन्तु उसी व्यक्ति पर होते हैं जो कि प्रयोजक की प्रसिद्धि, आकृति और शब्दों से प्रभावित होकर विश्वास कर चुकी हो वरना जिस पर प्रथम क्रिया नहीं की गयी या जो विश्वास से प्रभावित नहीं हुआ उस पर हिप्नोटिज़म् का प्रयोग कभी नहीं हो सकता।

विशेष स्पष्टीकरण

१—जब किसी व्यक्ति को खड़ा करके ढीला हो जाने का आदेश करते हैं ता वह मनुष्य प्रयत्न शून्य हो जाता है पुनः आंख बन्द करा देने और पीछे को झुका देने से वह पीछे गिरने को उद्यत हो जाता है। अपि च। जब साथ में यह कहा जाता है कि मैं तुम को पीछे की तरफ

खींचता हूं तुम अपने आपको मत रोकना किन्तु गिरने देना मैं तुम्हारा शरीर थाम लूंगा। बस ऐसा कहने और सर के पीछे हाथ रखने से तथा पीछे की तरफ झुकाने से वह स्वभावतः पोछे को गिरने लगता है। किन्तु अधिकारी भ्रान्ति से यह समझता है कि वस्तुतः मैं प्रयोजक के हिप्नोटिज़म् से गिर रहा हूं और लगातार उसके वचनों के साथ उत्तरोत्तर गिरता जाता है पुनः प्रभावित हुआ आगे की ओर भो गिरता हुआ महसूस करता है और गिर जाता है। इस क्रिया के पश्चात् उस प्रभावित हुई व्यक्ति पर जो भी चाहें सो कर सकते हैं। उसको सुलादो, उसके हाथ बाध दो, कुरसी पर चिपका दो, उसका नाम भुलवादो, कुत्ता बिल्ली की ध्वनि करा दो तथा जो चाहो प्रभाव डालदो। इत्यादि।

२—यदि कोई अपने मन में न गिरने का भाव रख लेवे या शरीर को ढीला न करे तो वह मनुष्य पाछे की ओर कदापि नहीं गिर सकता और ना ही उस पर पुनः कोई भी हिप्नोटिज़म् का प्रभाव पड़ सकता है। जब अधि-कारी प्रभावित हो जाता है तब उसको सुलाकर कहा जाता है कि अमुक स्थान पर जाओ और देखो कि वहां क्या हो रहा है। वह प्रभावित महाशय प्रयोजक के

अधीन होकर वैसा ही अनुभव करता और प्रश्नों के अनुसार बड़बड़ाने लगता है। किन्तु उत्तर ठीक नहीं होते हैं। कदाचित् अधिकारी की चित्त-वृत्ति शुद्ध होने से कोई उत्तर घुणाक्षर न्याय से ठीक निकल आता है। सच्चाई का अभ्यास धीरे २ करने से बड़ी मुशकिल से सत्य उत्तर देने में अधिकारी कुछ समर्थ होता है। इसी प्रकार बहुतरे प्रयोजक उस सुप्त महाशय से भूत और भविष्यत् की बातें भी पूछते हैं ये बातें भी सन्निपात ज्वरी के बकने समान मिथ्या होती हैं। कोई उस की अनुभूत या अकस्मात् बात सत्य हो जाती है जिस में कुछ सच्चाई अधिकारी की वृत्ति पर निर्भर है वरना सब मिथ्यालाप होता है। यह अधिकारी को स्थानान्तर में भेजना तथा उस से भूत और भविष्यत् की बातें पूछने का क्रम शनैः शनैः समीप स्थान व काल से दूर स्थान व काल पर अभ्यास किया जाता है एक दम दूर स्थान या दूर काल पर नहीं। एवं भ्रान्त करके मारण, मोहन, उच्चाटन और वशीकरण की ओर भी लोग प्रयोग करते हैं जो सर्वथा त्याज्य मार्ग है।

३—तार भेजने की भी शाखा है किन्तु उसका हिप्नोटिज़म् के साथ विशेष सम्बन्ध नहीं है। प्रत्युत उस में तार भेजने

वाले और ग्रहण कर्ता में परस्पर गहरा प्रेम होने पर विशेष घटनाओं का अनुभव स्वतः भी हो जाया करता है। केवल चिकित्सा तथा दूसरों के स्वभाव सुधार को जो ये दो शाखाएं हैं यही उपयोगी हैं। यह भी मानस-रोगो के लिये हितकर है। दूसरे रोगों में केवल शान्ति ही मिल सकती है। किन्तु रोग का मूल कदापि दूर नहीं होता। दूसरी शाखा में विना वैदिक शिक्षा के स्वभाव सुधारने में अन्य भ्रान्ति का आजाना सम्भव है। बस यह इस में कुल तत्व है अत एव मेस्मरिज़म्, हिप्नोटिज़म् वस्तुतः कोई विद्या नहीं है। केवल दूसरों को भ्रान्त करके स्वानुकूल बनाना है। हां वैदिक मर्यादा के अनुसार अपने अथवा दूसरे में किन्हीं संस्कारों का संस्थापन करने किंवा प्रभाव डालकर लाभ पहुंचाने की यह एक संस्कार-विद्या प्रार्थना और उपदेश पर निर्भर है। मनुष्य जब कभी चाहे कि अपने अन्दर से दुर्गुण दूर हों और सद्गुणों का आवेश हो तब वह बारम्बार इसके लिये एकान्त व शान्त हो प्रार्थना अर्थात् चिन्तना करे और यदि किसी अन्य व्यक्ति का सुधार चाहता है तो उपदेश द्वारा उस में उक्त लाभ पहुंचावे। विशेषतः एकान्त शान्त अथवा शयन जैसी अवस्था में

संस्कारों का संस्थापन अधिक होता है। एवं शनैः शनैः ऐसे समय का आना सम्भव है जब कि अपने वा दूसरों में इष्ट भावनाओं की पूर्ति को अनुभव करेगा। यह एक संस्कार-विद्या अथवा सङ्कल्पदर्शन है।

शिष्यः—मान्यदेव ! आपने मेस्मरिज़म् और हिप्नोटिज़म् के सिद्धान्त को बड़ी गम्भीरता तथा मनोविज्ञानदृष्टि और अनुसन्धान से मेरे सम्मुख रक्खा, मैं कृतज्ञ हूं तथा इसी क्रम-प्रसङ्ग में आगामी सप्ताह में कुछ विशेष सुनूंगा।

गुरुः—अच्छा याहि भद्र ! पुनरागत्यावश्यं श्रोतव्यम्।

मानवीय—विकास

(संख्या ६)

" शास्त्रीय मनोविज्ञान "

शिष्यः—गुरुवर ! नमोऽस्तु ते ।

गुरुः—जीवको भव वत्स ३ । गत सप्ताह की तुम्हारी जो इस विषय में विशेष सुनने की उत्कण्ठा थी सो आज मैं इसी लिये वास्तविक मनोविज्ञान को तुम्हारे सामने रक्खूंगा अतः सचेत और सावधान होकर श्रवण करना । देखा तुमको स्मरण होगा कि मैंने गत पाठों में यह बतलाया था कि मन आदि आन्तरिक पदार्थों में प्रत्येक के दो दो धर्म हैं अर्थात् मन से सङ्कल्प और विकल्प, बुद्धि से सन्देह और निश्चय, चित्त से भूत स्मरण और भावी स्मरण, अहङ्कार से ममेदम्-यह मेरा है यानि ममता और अहमिदम् , मैं इस प्रकार हूं । एवं इनमें से प्रथम मन के सम्बन्ध में उपदेश करता हूँ सुनो-

वत्स ! मन के दो धर्म हैं यानि मन अपने दो मार्गों पर गति करता है; एक सङ्कल्प (अस्तुकामः-प्राप्ति की इच्छा) दूसरे विकल्प (नास्तुकामः—प्रतिकार की इच्छा) उन दोनों मार्गों से मनको अलग कर देना यानि सङ्कल्प

और विकल्प दोनों से ही खाली कर देना चाहिये। जब इस प्रकार मन अपने मार्गों से पृथक कर दिया जाता है तो वह केन्द्रित हो जाता है। निज केन्द्र में आजाने से निश्चेष्ट हो जाता है। और अपने वास्तविक स्वरूप को द्रष्टा के सम्मुख रख देता है, अर्थात् उस समय मन का प्रत्यक्ष वस्तु-रूप से इस प्रकार होता है जैसे अन्य वस्तुओं का। मन के स्वरूप-विज्ञान से एक अलौकिक सुखानुभव होता है जो ऐन्द्रियिक सुखों से ऊपर होता है। अपि च मन का इस शुद्ध रिक्त तथा पुष्टावस्था में जो जो संस्कार डालना चाहते हैं वह दृढ़ होंगे यानि दुर्गुण के निकालने तथा सुगुण के प्रवेश की बारम्बार चेष्टा होनी चाहिये। इस प्रकार बारम्बार के अभ्यास से अपने उद्देश्य में सफल हो जाता है क्योंकि—"यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति" मनुष्य जिस वस्तु का बारम्बार ध्यान करता है उस को अपनी वाणी पर लाता तथा कर्म में घटता है। इस प्रकार अभ्यास करने से मन में इतना सामर्थ्य उत्पन्न हो जाता है कि मनुष्य अपनी इच्छानुसार किसी भी विचार को तत्क्षण मन से पृथक कर सकता है और तत्क्षण ही किसी नवीन विचार को मन में स्थान दे सकता है। मानसशक्ति के विकास

का यह एक फल है। यह मनके सम्बन्ध में उपदेश चार सप्ताहों के लिये पर्याप्त है अर्थात् मनको रिक्त करने के लिये दो सप्ताह और तृतीय सप्ताह में दुर्गुणों के बहिष्कार का चिन्तन तथा चतुर्थ सप्ताह सुगुणों के आवेशार्थ समझें।

शिष्यः—गुरुदेव ! मन से आगे बुद्धि का विज्ञान और विकास किस प्रकार किया जाता है।

गुरुदेव!—अन्तेवासिन् ! बुद्धि भी दो मार्गों पर चलती है, यानि सन्देह और निर्णय करना ये दो मार्ग हैं। बुद्धि को जब इन दोनों मार्गों से पृथक् कर देते हैं तो वह भी निज केन्द्र में आ जाती है। उस समय उसका स्वरूप मन की अपेक्षा सूक्ष्म होता है अतएव उसके दर्शन से अधिक आनन्द प्रतीत होता है। इसके अभ्यास का प्रकार यह है कि मनोदर्शन के पश्चात् एकान्त और शान्त स्थान में बैठे हुए जब बुद्धि सन्देह या निर्णय की ओर प्रवृत्त हो तो उसको वहां से हटाना चाहिये किसी प्रकार का वितर्क और तर्क न उठने दे। इस प्रकार निर्मल बुद्धि से सन्देह स्थलों में शीघ्र सन्देह तथा निर्णय विषयों का शीघ्र निर्णय कर सकेगा। यह बौध शक्तियों का परिचय तथा विकास है।

शिष्यः—देववर ! चित्त के स्वरूप-परिचय तथा इसके विकास का प्रकार क्या है ?

गुरुः—बोध विकास के पश्चात् चित्त के अभ्यास की विधि यह है कि चित्त पदार्थ भी मुख्य रूप से दो ही मार्गों में प्रवृत्त होता है। इसको इनसे अलग कर लेना चाहिये यानि जब चित्त में भूत विषयक स्मृति आवे तो चित्त को उससे हटा लेवे एवं भविष्यत् विषयक स्मरण से भी पृथक कर देवे इस प्रकार चित्त केन्द्र में वर्तमान होगा। इसका स्वरूप भी बुद्धि की अपेक्षा गूढ़ है ! अत एव इसके दर्शन से भी विशेष सुख का अनुभव होता है इसके अतिरिक्त भूत विषयक स्मरण शक्ति भी बढ़ाई जा सकती है। यानि तीन घण्टे पूर्व का स्मरण करना पुनः छ घण्टे पूर्व का एवं द्विगुणित भूतकाल के स्मरण क्रम का अभ्यास करते २ अपने अत्यन्त शैशवकाल को भी स्मृति पथ ला सकते हैं। इसी प्रकार दूसरे के प्रति भी इसका अभ्यास किया जा सकता है। एवं भावी उद्देश्य विषयक स्मरण का भी यही क्रम है। यह चित्त की शक्ति के परिज्ञान और विकास का स्वरूप है।

शिष्यः—मान्यवर ! इसके अनन्तर अहङ्कार का परिचय और विकास किस प्रकार किया जाता है।

गुरुः—प्यारे पुत्र ! अहङ्कार भी दो मार्गों से सम्बन्ध रखता है। एक तो ममेदम् दूसरा अहमिदम् यानि ममेदम् यह मेरा पुत्र, पिता, माता, पत्नी, पति, भ्राता, भगिनी,

मित्र व धन धान्य स्थान मकान, गौ आदि पदार्थ हैं इन में ममता (अपना पन) रखना अहङ्कार का ममेदम् मार्ग पर चलना है। इस मार्ग से अहङ्कार वस्तु को अलग करना कि ये तो क्या अपने हैं, स्वशरीर भी अपना नहीं क्योंकि जैसे अनेक मनुष्य मेरे सम्मुख अपने शरीर को छोड़कर चले गये एवं मुझे भी इस अपने कलेवर को त्याग देना ही पड़ेगा। तथा दूसरे अहमिदम् मैं ऐसा हूं इस मार्ग से भी अहङ्कार को अलग करना चाहिये यानि मैं मोटा हूँ, मैं कृश हूं, मैं सबल हूं-मैं निर्बल हूं, मैं बड़ा हूं-मैं छोटा हूं आदि भावना छोड़ देनी चाहिये क्योंकि शरीर पात होने पर मैं ऐसा न रहूंगा किन्तु ये मेरे धर्म नहीं हैं प्रत्युत शरीर के धर्म हैं, तथा मैं अन्धा हूँ मैं सुदृष्टिमान् हूँ, मैं बधिर हूँ-मैं सुश्रोत्र हूँ, इत्यादि धर्मों से लिप्त न होना। अपि च। मैं पवित्र हूं मैं अपवित्र हूं, मैं बुद्धिमान् हूँ-मैं अबुद्धिमान् हूं, मैं स्मृतिमान् हूं मैं अस्मृतिमान् हूं, मैं निष्काम हूं-मैं सकाम हूं इत्यादि अन्तःकरण धर्मानुपाती न हो, इस प्रकार धर्मों से सर्वथा अलग करके केवल अहमस्मि मैं हूं ऐसा ही साक्षात् करे। इस प्रकार अहङ्कार का स्वरूप चित्त से सूक्ष्म होगा अतएव इसमें चित्त की अपेक्षा अभ्यासी अधिक आनन्द को मानता है। वस्तुतः सारे संसार के सुखों

का कारण यह अहमस्मि अहम्भाव ही है क्योंकि अपने अहम्भाव को अलग करके किसी भी सुख का अनुभव नहीं हो सकता। जब इस प्रकार ममत्व और अहम्भाव से अहङ्कार को अलग कर लिया जाता है तब वह निज केन्द्र में पहुंच जाता है। और उसकी अहं-शक्ति में इतना बल आ जाता है कि वह जिसका ममत्व करता है वह पदार्थ वस्तुतः उसका हो जाता है, यानि, जिस वस्तु को वह अपनी बनाना चाहता है वह उसकी बन जाती है। तथा जिस आन्तरिक धर्मयुक्त अपने आपको अनुभव करना चाहता है वह साक्षात् वैसा हो जाता है। बस यहां तक ही मनोविज्ञान की चरम सीमा है। इससे आगे आत्मविज्ञान का क्षेत्र है। प्रसङ्गतः उसको भी कुछ समझा देना चाहता हूँ। देखो जब अहमस्मि मैं हूँ यह अनुभव हो चुका तो अहम्भाव को भी अनुभव न करे, किन्तु 'अस्मि' अर्थात् हूं ऐसा अनुभव हो तो यह अपने चितिरूप आत्मा का स्वरूप है। जब कि विना बाहरी प्रमाणों के अपने आत्मा का साक्षात् होता है तो फिर विना बाहरी प्रमाणों के परमात्मा का साक्षात् भी होता है। अतः अस्मि (हूं) सत्ता के अनन्तर अस्ति (है) सत्ता का साक्षात् होता है। यही उपनिषद् विद्या

का मर्म किंवा ध्येय है "अस्तीत्येवोपलब्धव्यः, अस्ती-त्येवोपलब्धव्यस्य तत्वभावः प्रसीदति" (कठो०।६।१३) साक्षात् दशा में 'परमात्मा है' बस यही एक अनुभव करना चाहिये। यह अनुभव तादात्म्य सम्बन्धरूप है। परमात्मा को इस प्रकार अनुभव करने वाले का आन्तरिक प्रसाद यानि आत्मविकास हो जाता है। पुनः वह 'एकात्म प्रत्ययसार, प्रपञ्चोपशम, शान्त, शिव और अद्वैत' इष्टदेव को अनुभव करके कृतकृत्य होवे। यह एक औपनिषद आत्मविज्ञान है। बस हे अन्तेवासिन्! मनोविज्ञान के सम्पूर्ण रहस्य तुम्हारे सम्मुख रख चुका हूं अगले सप्ताह में कतिपय वेद मन्त्रों से मनोविज्ञान के सम्बन्ध में विशेष बतलाऊंगा।

शिष्यः—अच्छा! गुरुदेव! मैं कृतज्ञ हूं।

मानवीय—विकास

(संख्या ७)

" वेदोपदेश "

शिष्यः—पूज्य गुरो ! गत सप्ताह आपने कहा था कि आगामी दिनों में मनोविज्ञान विषयक वेदोपदेश करूंगा अत एव आपसे सविनय प्रार्थना है कि मुझे वेदोपदेश से अनुगृहीतकरें।

गुरुः—हां, वत्स ! मनोविज्ञान के सम्बन्ध में मेरा यह अन्तिम वक्तव्य है। मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार यद्यपि पृथक् पृथक् वस्तु हैं। उपनिषदों में इनका स्वरूप अलग अलग ही वर्णन किया है " मनसस्तु परा बुद्धि बुद्धेरात्मा महान् परः । १० । महतः परमव्यक्तम् (अव्यक्तात्पुरुषः परः) ११ । यच्छेद्वाङ् मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञन आत्मनि । " ज्ञनमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि " १३ (कठो० अ० १। व० ३) वैशेषिक और न्याय तथा मनुस्मृति में इनको पृथक् पृथक् न कह कर केवल मन नाम से ही वर्णन किया है। " पृथिव्यापस्तेजोवायुराकशंकालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि " (वैशेषिक। १।१।५) "युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसोलिङ्गम्" (न्याय।१। १।१६) " एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम् । यस्मिन् जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौगणौ " (ममुस्मृति।

२।६२) योग चित्त के नाम से कहता है । तथा कोई कोई आचार्य केवल बुद्धि नाम से तथा अहङ्कार कहकर ही व्यवहार करते हैं । वेद में भेद तथा अभेद दोनों प्रकार हैं । किन्तु विशेष-मनोविज्ञान केवल मन शब्द से प्रत्येक के लिये कहा है :—

१—यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरं गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ”
(यजु० । ३४ । म० १) यह मन जागते तथा सोते हुए मनुष्य का निज दैव यानि संस्कारों किंवा वासनाओं को दूर से दूर स्थान तक उत्क्रान्ति करता है । ऐवं यह वेगवान् पदार्थ ज्योतियों का ज्योति यानि विद्युत्रूप यह मेरा मन शिवसङ्कल्प वाला हो। शिवसङ्कल्प का तात्पर्य यह है कि सङ्कल्प और विकल्प करना जो मन के ये दो धर्म हैं उन दोनों से मन को रिक्त कर देना चाहिये अर्थात् न सङ्कल्प रहे नाहो विकल्प । किन्तु सांसारिक सङ्कल्प और विकल्प से पृथक् करके पुनः शास्त्रीय इष्टसङ्कल्प वाला बनाना वेद का लक्ष्य है (यह मन के विषय में समझो) ।

२—“यत्प्रज्ञानमुत चेतोधृतिश्च” यजुः ३४। ३) जो यह प्रज्ञान—=बुद्धि पदार्थ है जिसको चेतः, धृति आदि नामों से कहते हैं यह मेरा मन कल्याण का निश्चय करने वाला हो, (यह बुद्धि के विषय में समझो)

३— "येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्" (यजुः । ३४ । ४) जिस से भूत वर्तमान तथा भविष्यत् काल का स्मृति रूपज्ञान गृहीत होता है वह चित्तरूप मेरा मन सत्य धारणा यानि सत्यस्मृति वाला हो (यह चित्त के विषय में समझें)

४ —"यस्मिन्नृचः साम यजूंषि प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः । यस्मिंश्चित्तमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु" (यजुः । ३४ । ५) जिस में ऋग्, यजुः, साम और अथर्व की विद्या संगृहीत है तथा जिस में सब प्राणियों का चित्त संहत वा ग्रन्थित है किंवा अनुकूलता को प्राप्त होता है ऐसा यह अहङ्काररूप मेरा मन नेतृत्व भावना वाला हो (यह अहङ्कार के विषय में समझें) दूसरे के अन्तःकरण को वश में रखने या प्रभावित करने में यही साधन है। इन चारों को एक रूप भी इसी प्रकरण में कहा है "यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानाम्" (यजुः । ३४ । २) जो अपूर्व सेव्य वस्तु प्राणियों का अन्तःकरण चतुष्टय है वह अन्तःकरण रूप मेरा मन उत्तम संस्कार वाला हो। विद्वानों का कथन है कि बाह्य जीवन का आधार आन्तरिक जीवन है। अत एव इस अन्तःकरण में उत्तम संस्कारों की आवश्यकता है जो कि उत्तम कार्यों के आरम्भक होंगे। उत्तम संस्कारों का सञ्चय परमात्मदेव तथा सत्पुरुषों के सङ्ग

और वेद तथा ऋषि प्रणीत ग्रन्थों के अध्ययन से होगा। अत एव अपने आन्तरिक जीवन में भी एक अपूर्व सामर्थ्य को उत्पन्न करना पौरुषेय है। अतः। " स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व। महिमा तेऽन्येन न सन्नशे " (यजुः। २३। १५) के अनुसार निज शक्तियों का परिचय और उनका विकास करना मानव धर्म और वेद का मुख्य लक्ष्य है। मनको अपनी इच्छानुसार बनाया जा सकता है क्योंकि मन केवल चञ्चल ही नहीं है प्रत्युत मन के पांच धर्म हैं " क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धमिति चित्तभूमयः " (योग पर व्यास वचन) इनमें से जिसका अभ्यास किया जावे वैसा मन बन सकता है यानि यदि क्षिप्तता(चञ्चलता)की ओर अभ्यास किया जावे तो इतना चञ्चल हो जावे कि जीवन को हाथ धोकर चलना पड़े। अगर मूढ़ता का अभ्यास किया हो तो महापागल होकर नष्ट हो जावे। विक्षेपी (दुःखी) होने में अभ्यस्त हो तो प्रत्येक प्रसङ्ग में दुःख ही दुःख अनुभव करके मर जावे। एकाग्रता में " यस्त्वेकाग्र चेतसि सद्भूतमर्थं प्रद्योतयति " वस्तु का स्वरूप ज्ञान हो जाता है। निरुद्ध में परमात्मा जैसा बन जाता है। अतः एकाग्रता और निरोध का सेवन करके लाभ उठाना चाहिये।

शिष्यः—पूज्यवर ! आपके इस उपदेश से अत्यन्त अनुगृहीत हूं। भगवन् आज आपके समागम का अन्तिम दिवस है।

अतः मैं गुरुदक्षिणा में कुछ भेंट करना चाहता हूं, अत एव इष्ट वस्तु की आज्ञा करें ।

गुरुः—अन्तेवासिन्! अपने जीवन को उन्नत करो और दूसरों को यथाशक्ति उन्नति पथ पर ले चलो यही एक गुरु दक्षिणा है। तुम्हारी सहृदयता, कृतज्ञता और योग्यता के कारण मेरा पुनरपि एक उपदेश है और वह यह कि "कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः । गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनञ्जयो हिरण्यजित्" (अथ० । ७ । ५२ । ८) तुमको उचित है कि जब स्थूल सूक्ष्म किंवा अतिसूक्ष्म साधन से जो भी कार्य करो तब प्रत्येक कार्य के प्रति यह दृढ़धारणा हो कि मानो कर्म दक्षिण हाथ में है और विजय या फल वाम हस्त में है यानि मैं कर्मशील अवश्य सफल हूँगा यह ऐसा भाव रखना अत्यावश्यक है। गौ आदि पशु भूमि वा राष्ट्र, धन या अन्य सम्पत्ति का विजेता बनूंगा। इति शम्।

शिष्यः—पूज्यवराय गुरुदेवाय नमो नमः।

कार्तिक कृष्णा सं० १९८४ भवदीय, वैदिकधर्म का सेवकः-

प्रियरत्न

सार्वदेशिक अनुसन्धान कार्यालय
एस्पलेनेड रोड देहली